ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
ISSN No.: 2347-2944, RNI TITLED No: UPBIL04292,
RNI REG.No.:UPBIL/2014/66218, SOCI.REG. No. 561/2013-14
Vol.-5, No.-I, PP-120-123, YEAR JUNE 2016

अद्वैत वेदान्त और जीवन दृष्टि

❑ डॉ0 मनीष पाण्डेय

भारतीय एवं वैदेशिक दर्शन के क्षेत्र में वेदान्त दर्शन के अद्वैतवाद सिद्धान्त का सर्वाधिक महत्त्व है। आचार्य शंकर के द्वारा प्रतिपादित यह सिद्वान्त शांकर–वेदान्त के रूप में लब्धप्रतिष्ठ है। ध्यातव्य है कि यह सिद्धान्त भारतीय चिन्तन परम्परा में अत्यन्त प्राचीन एवं महत्त्वपूर्ण है जिसके बीज वैदिक साहित्य में उपलब्ध हैं किन्तु इसे व्यवस्थित और सैद्धान्तिक रूप प्रदान करने का श्रेय–आचार्य शंकर को ही है। शंकराचार्य भारतीय दर्शन जगत् के ऐसे प्रौढ एवम् अद्वितीय आचार्य हैं, जिन्होंने ब्रह्मसूत्र, उपनिषद् तथा श्रीमद्भगवद्गीता रूप प्रस्थानत्रयी पर वैदुष्यपूर्ण भाष्य–रचना के माध्यम से जिस समन्वयवादी अद्वैत दर्शन को प्रस्तुत किया है, वह लौकिक तथा पारलौकिक–दोनों ही दृष्टियों से सिद्धिदायक है। उसमें जीवन–दृष्टि भी है और मोक्ष–दृष्टि भी। इन दोनों दृष्टियों की समन्विति हीशांकर– अद्वैतदर्शन का साध्य है।

वेदान्त एक समग्र एवं समन्वित दर्शन है जिसके अन्तर्गत जीवन व्यवहार की वह पद्धति वर्तमान है जो मानव को ऐहिक एवं पारलौकिक जीवन के साफल्य की कुंजिका प्रदान करती है। वस्तुतः आज की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक विषमताओं के परिणामस्वरूप उत्पन्न परिस्थितियों में, पारस्परिक कलह और दुर्भावना के विषज वातावरण में, जाति सम्प्रदाय की पक्षपातपूर्ण व्यवहार दशा में, नैतिक एवं सांस्कृतिक ह्रास के युग में यदि कोई समाधान प्रस्तुत कर सकता है, तो वह वेदान्त दर्शन ही है। जीवन के विविध पक्षों से वेदान्त की युति उसे जीवन दर्शन के रूप में प्रतिष्ठित करती है।

दृशिर् प्रेक्षणे धातु से करण अर्थ में ल्युट् प्रत्यय के योग से निष्पन्न 'दर्शन' शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है–'दृश्यतेऽनेन इति दर्शनम्'। अर्थात् जिसके द्वारा देखा जाय, उसे दर्शन कहते हैं। यों तो विभिन्न प्रकरणों में इस शब्द के अनेक अर्थ हैं किन्तु सामान्य रूप से दार्शनिक सम्प्रदायों के सन्दर्भ में दर्शन शब्द से उन विचार दृष्टियों का बोध होता है, जिनके द्वारा जगत् की कारणता, परब्रह्म अथवा मोक्ष के स्वरूपादि के सम्बन्ध में विचार किया जाता है। जहां तक जीवन दर्शन का सम्बन्ध है। यह जीवन की उस दृष्टि का नाम है जो मानव को आदर्श तथा आनन्दमय जीवन पथ का, आदर्श जीवनयापन की प्रक्रिया का बोध कराती है। यह तथ्य और है कि किसी दार्शनिक सम्प्रदाय में यह जीवन–दृष्टि अतिशय प्रखर होती है, तो किसी में मन्द। जहां तक वेदान्त दर्शन का सम्बन्ध है, यह दृष्टि व्यावहारिक भी है और वैज्ञानिक भी।

आचार्य शंकर द्वारा प्रतिपादित अद्वैत वेदान्त उत्कृष्ट मानवमूल्यों का आकर–सिद्धान्त है। प्रकृत दर्शन का उच्चतम मानवमूल्य आत्मसाक्षात्कार है। यह जीवन की वह स्वाभाविक एवं मूल स्थिति है जिसमें मानव ममत्व तथा परत्व के भाव से रहित तथा सुख एवं दुःख से वियुक्त होकर आत्मतत्त्व का दर्शन करता है। आत्मबोध, तत्त्वदर्शन, स्वरूपज्ञान तथा मोक्ष इस स्थिति के अपर पर्याय हैं। यहां यह कहना कथमपि असंगत न होगा कि आत्मसाक्षात्कार में सहायक होने के कारण वेदान्त में सत्कर्मों की अपेक्षा, मानवमात्र को कर्त्तव्यच्युत होने से तथा पथभ्रष्ट होने से रोकती है। यहीं से राह निकलती है लौकिक अभ्युदय की, जिसे मानव का प्राप्तव्य बताया गया है1। आत्मसाक्षात्कार जीवन का परमलक्ष्य है तथा संसार उसकी प्राप्ति के लिए की जाने वाली जीवन यात्रा। अतः इस सांसारिक यात्रा में 'कर्म' का अत्यधिक महत्त्व है, जो विश्व की आचार संहिता का मूल मंत्र है।

❑ वरिष्ठ प्रवक्ता, संस्कृत विभाग, जवाहरलाल नेहरू मेमो0 पी0 जी0 कॉलेज, बाराबंकी (उ0प्र0) भारत

कर्म सिद्धान्त के अनुरूप कर्मफल अवश्य भोग्य है क्योंकि वेदान्त दर्शन के अनुरूप तत्त्वज्ञान होने पर जीव के संचित तथा क्रियमाण कर्म तो नष्ट हो जाते हैं, किन्तु प्रारब्ध कर्म का नाश नहीं होता। कर्मफल की अवश्य तथा अनिवार्य भोग्यता का यह विचार मानव जीवन के लिए यह दृष्टि प्रदान करता है कि उसे किसी कार्य को करने से पूर्व यह समझ लेना चाहिए कि उसे अपने कर्मों के अनुरूप फल अवश्य प्राप्त होगा। वस्तुतः यदि वर्तमान युग का नितान्त ईर्ष्या, द्वेष एवं घृणा से युक्त एवं दूसरों के प्रति दुष्कृत्य में तत्पर मानव ''कर्मफल'' के भोग की असंदिग्धता में विश्वास कर ले तो दर्पण की भांति स्वच्छ तथा निर्मल हो सकता है, जीवन शान्तिप्रद हो सकता है। वेदान्त की यह सिद्धान्त–स्थापना जीवन दर्शन को व्यापक तथा वैज्ञानिक रूप प्रदान करती है।

पुनः पुनर्जन्म का वेदान्त सम्मत सिद्धान्त भी जीवन दर्शन को परिभाषित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य करता है, क्योंकि जिन कर्मों का भोग हमको इस जन्म में प्राप्त नहीं हुआ, वे पुनर्जन्म होने पर उस जन्म के भोक्तव्य होंगे। अतः आधुनिक युग की उद्विग्नताओं, असफलताओं से आक्रान्त तथा नैराश्यनद में डूबे हुए मानव को वेदान्तिक जीवन–दर्शन का यही उपदेश है कि उसे प्रारब्ध का भोग करते समय भी उद्विग्न नहीं होना चाहिए2 तथा स्वकर्त्तव्य में सदाशयता के साथ रत रहना चाहिए क्योंकि जहां उत्कृष्ट कर्मों का सम्पादन करके मनुष्य स्वर्गादि लोकों को प्राप्त करता है, वहीं निकृष्ट कर्मों के माध्यम से वह निकृष्ट लोक तथा देह को प्राप्त करता है। अस्तु, वेदान्त मनुष्य को सकारात्मक ऊर्जा के साथ सत्कर्मों में जीवन–निवेशका उपाय तो सुझाता ही है, पुनर्जन्म के आधार पर कर्म के सम्बन्ध में न्यायपूर्ण दृष्टि का भी बोध कराता है।

अद्वैत वेदान्त की वैज्ञानिकता तथा जीवन पर उसके प्रभाव का अध्ययन 'संस्कार' के माध्यम से भी सम्भव है। वस्तुतः मनुष्य जिन कर्मों का सम्पादन करता है उनका प्रभाव उसके मानस पटल पर अवश्यमेव पड़ता है। मानव मस्तिष्क में निर्मित होने वाले सत् अथवा असत् संस्कार वस्तुतः उसके द्वारा किये गए सदसद् कर्मों का ही परिणाम हैं। पुनः ये संस्कार मानव मात्र को तत्तत् कर्मों में प्रवृत्त करते हैं। वेदान्त परिभाषा ने इस 'संस्कार' को ही 'वृत्ति' स्वीकार किया है जो वस्तुतः अन्तःकरण का परिणाम विशेष है3। प्रसिद्ध पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक सिगमण्ड फ्रॉयड ने भी संस्कार को चेतन तथा अचेतन मन के रूप में अपनी स्वीकृति दी है।

आश्रम पद्धति को भी, भले ही परोक्षतः, स्वीकार करके वेदान्त दर्शन आधुनिक जीवन पद्धति के दोषों से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है। प्राच्य पद्धति का अनुकरण व्यक्तिगत साध्य के साथ ही सामाजिक दायित्वों के निर्वहन का भी साधक है। वर्तमान सामाजिक विसंगतियों, चारित्रिक पतन, लोभाविष्ट जीवन शैली आदि को सम्यक् करने , तथा व्यक्तित्व के उत्कर्ष में चतुर्विध आश्रमों की प्रासंगिकता सर्वस्वीकार्य है। अधुनातन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि आश्रम व्यवस्था के निर्देशों का अनुकरण मानव मात्र को चारित्रिक उत्कृष्टता के उच्चस्थ मूल्य स्थापित करने में सहायक सिद्ध होगा।

ईश्वरवाद वेदान्त सम्मत जीवन दर्शन का आधारभूत सिद्धान्त है, क्योंकि व्यक्ति के सत्कर्मों तथा असत्कर्मों के फल का प्रदाता ईश्वर ही है। जीव को उसके स्वयं किये गए कर्मों के आधार पर शुभाशुभ फल अवश्य प्राप्त होते हैं और इन फलों के भोक्तृत्व का निर्धारण ईश्वर ही करता है। ईश्वर एक निष्पक्ष न्यायाधीश की भांति न तो किसी को ऊंचा उठाता है और न ही किसी को नीचे गिराता है। वह तो जीवन के उत्कृष्ट व निकृष्ट कर्मों की व्यवस्थानुसार ही जीव को फल देता है। वेदान्त के अनुसार ईश्वर का अनुग्रह प्राप्त करने की लालसा में व्यक्ति सत्य के मार्ग का अनुसरण करने के लिए बाध्य होता है। आत्मालोचन, आत्मपरिष्कार तथा चित्तशुद्धि के लिए भी ईश्वर की सन्निधि आवश्यक है।

विचारणीय है कि ''अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्मशुभाशुभम्'' के अनुरूप ही यदि कर्मफल भोगना है

तो ईश्वराराधन से शुभ फल की प्राप्ति का योग कैसे निर्मित हो सकता है ? समाधान स्वरूप कहा जा सकता है कि जिस सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति पूर्वकृत कर्मों का फल भोगता है, उसी प्रकार उसे आराधन व प्रार्थना रूप कर्मों के फल भी प्राप्त होंगे, क्योंकि प्रार्थना व आराधना सत्कर्म हैं, पुण्य कर्म हैं जिनसे पूर्वकृत अशुभ कर्मों का क्षय होता है तथा अभ्युदय का मार्ग प्रशस्त होता है।

लोक में कभी कभी निकृष्ट व अशुभ कर्मों का कर्ता अत्यन्त सम्पन्न तथा सुखी दिखाई पड़ता है जबकि कर्त्तव्यनिष्ठ तथा शुभ कृत्यों का कर्ता व्यक्ति निर्धन तथा दुःख भोगता हुआ दिखाई पड़ता है। ऐसी परिस्थिति में सामान्य जन को ईश्वर की न्यायप्रियता में सन्देह सा होने लगता है, किन्तु यह असंगत अवधारणा है। वस्तुतः व्यक्ति, मात्र इस जीवन में ही किए गए कर्मों का फल नहीं भोगता अपितु पूर्वजन्म का प्रारब्ध भी उसके वर्तमान में निर्णायक भूमिका का निर्वहन करता है। इन्हीं शुभाशुभ कर्मों का प्रतिफल होता है वर्तमान जीवन। भारतीय जीवन–दर्शन की यह कर्म विषयक पृष्ठभूमि ही व्यक्ति के जीवन में आचार–व्यवहार के महत्त्व को स्पष्ट करती है, साथ ही ईश्वर को प्रकारान्तर से नियन्ता भी।

वेदान्तसम्मत जीवन्मुक्ति की अवधारणा ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' के उद्घोष की पूर्वपीठिका है। वेदान्त के अनुसार जीवन्मुक्ति उस स्थिति का नाम है, जब जीव ब्रह्म के सत्स्वरूप में ही अपने स्वरूप का लय कर लेता है तथा नित्य आनन्दमय स्वभाव को प्राप्त कर (ब्रह्म और जीव के) अद्वय रूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। जीव की यही निर्मल–निश्छल प्रस्थिति विश्व में एकात्मवाद का अनुभव कर सकती है, साथही प्रत्येक जीव में उत्पन्न यह अनुभूति, धर्म–जाति तथा रंग के भेद से रहित स्वाभाविक रूप से, सम्पूर्ण पृथ्वी को एक परिवार के रूप में प्रतिबिम्बित कर सकती है। अधुनातन सन्दर्भ में वेदान्त की प्रकृत अवधारणा को इसी दृष्टि से देखने की अपेक्षा है और यह वेदान्त के विपरीत कदापि नहीं। वेदान्त के अनुसार, जीवनमुक्त प्राणी ममत्व तथा परत्व की भावना से उठकर समस्त संसार के साथ समत्व का व्यवहार करता है। पुनः जीवन्मुक्ति के स्तर तक पहुंचते–पहुंचते प्राणी का चित्त इस प्रकार उदात्त एवं परिष्कृत हो जाता है कि उसके द्वारा सहज ही शुभ कर्मों का सम्पादन होने लगता है। वेदान्त में भले ही जीवन्मुक्ति के लिए विभिन्न योग्यताओं की अपेक्षा हो, किन्तु मूलतः चित्त का नैर्मल्य ही सर्वत्र अपेक्षित है। चित्त की यह निर्मलता समस्त धर्मों में सम्भव है। इस प्रकार वेदान्त के द्वार समस्त मानवमात्र के लिये अनावृत हैं, खुले हुए हैं।

निष्कर्षतः यह कहना असंगत न होगा कि सांसारिक दुःखों से सन्तप्त मानव को सुख एवं सान्त्वना प्रदान करने वाला यदि वेदान्त है, तो सुखमय जीवन यापन करने वाले व्यक्ति को निर्लिप्त भाव से जीवन का उपदेश देने वाला भी यही दर्शन है। वेदान्त अकर्मण्य को कर्मठ तथा अपूर्ण को पूर्ण बनाने का मार्ग प्रशस्त करता है। एकात्मवाद की दृष्टि के अनुरूप संसार के असमान मानकों को एक सूत्र में बांधना भी वेदान्त का परम उद्देश्य है–''सर्वं खल्विदं ब्रह्म।''

वस्तुतः वेदान्त का एकात्मवाद ही भारतीय जीवन–दर्शन की प्रौढ भित्ति तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना का मूल मंत्र है। अहिंसा प्रभृति सिद्धान्त एकात्मवाद की ही प्रकारान्तर से की गई व्याख्याएं हैं।4 वेदान्त में मन की शुद्धता पर बल देते हुए5 ज्ञानी के लिए भी सम्यक् लोकाचार का विधान किया गया है6। इस प्रकार वेदान्त की व्यावहारिक जीवन दृष्टि मानवमात्र को उचित धर्म के निर्वाह का उपदेश देकर व्यवहार की तथा आत्मानुभव के द्वारा ''अहं ब्रह्मास्मि'' के माध्यम से परमार्थ की उपलब्धि कराने में सर्वथा समर्थ है, सक्षम है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शांकरभाष्य, श्रीमद्भगवद्गीता, 10/13
2. प्रारब्धमखिलं भुज्जन्नोद्वेगं कर्तुमर्हति। अपरोक्षानुभूति, 89
3. अन्तःकरणस्य परिणामविशेषो वृत्तिः। वेदान्त परिभाषा, प्रथम परिच्छेद

4. आत्मैकत्वविद्याप्रतिपत्तये सर्वे वेदान्ताः प्रारभ्यन्ते। ब्र0सू0शा0भा0 1/1/1

5. मनो विशुद्धो गृही भवेद् वाप्युत मस्करी वा। शंकर दिग्विजय, 13/567

6. पंचदशी, ध्यानदीपप्रकरण।

*****